५१ कर्म और पुरुषार्थ की जैन कथाएँ

☐ डॉ० प्रेम सुमन जैन

जैन आगम साहित्य में प्रतिपादित कर्म और पुरुषार्थ सम्बन्धी चिन्तन का प्रभाव प्राकृत कथाओं में भी देखने को मिलता है। वैसे तो प्रायः प्रत्येक प्राकृत कथा में पूर्वजन्म,, कर्मों का फल तथा मुक्ति-प्राप्ति के लिए संयम, वैराग्य आदि पुरुषार्थों का संकेत मिलता है। किन्तु कुछ कथाएँ ऐसी भी हैं जो कर्म-सिद्धान्त का ही प्रतिपादन करती हैं, तो कुछ पुरुषार्थ का। भारतीय संस्कृति में चार पुरुषार्थों का विवेचन है—धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष। वस्तुतः प्राकृत कथाओं में इनमें से दो को ही पुरुषार्थ माना गया है काम और मोक्ष को। शेष दो पुरुषार्थ इनकी प्राप्ति में सहायक हैं। धर्म पुरुषार्थ से मोक्ष सधता है तो अर्थ से काम पुरुषार्थ अर्थात् लौकिक समृद्धि व सुख आदि। प्राकृत कथाओं में इन लौकिक और पारलौकिक दोनों पुरुषार्थों का वर्णन है, किन्तु उनका प्रभाव समाज पर भिन्न-भिन्न पड़ा है।

प्राकृत कथाओं में कर्म-सिद्धांत को प्रतिपादित करने वाली कथाएँ 'ज्ञाताधर्म कथा' में उपलब्ध हैं। मणिकुमार सेठ की कथा में कहा गया है कि पहले उसने एक सुन्दर वापी का निर्माण कराया। परोपकार एवं दानशीलता के अनेक कार्य किए। किन्तु एक बार जब उसके शरीर में सोलह प्रकार की व्याधियाँ हो गयीं तो देश के प्रख्यात् वैद्यों की चिकित्सा द्वारा भी मणिकुमार स्वस्थ नहीं हो सका। क्योंकि उसके असाता कर्मों का उदय था। इसलिए उसे रोगों का दुःख भोगना ही था। इसी ग्रंथ में काली आर्या की एक कथा है, जिसमें अशुभ कर्मों के उदय के कारण उसकी दुष्प्रवृत्ति में बुद्धि लग जाती है और वह साध्वी के आचरण में शिथिल हो जाती है।

आगम ग्रंथों में विपाक सूत्र कर्म सिद्धांत के प्रतिपादन का प्रतिनिधि ग्रंथ है। इसमें २० कथाएँ हैं। प्रारम्भ की दस कथाएँ अशुभ कर्मों के विपाक को एवं अन्तिम दस कथाएँ शुभ कर्मों के फल को प्रकट करती हैं। मियापुत्र की कथा क्रूरतापूर्वक आचरण करने के फल को व्यक्त करती है तो सोरियदत्त की कथा मांसभक्षण के परिणाम को। इसी तरह की अन्य कथाएँ विभिन्न कर्मों के परिपाक को स्पष्ट करती हैं। इन कथाओं का स्पष्ट उद्देश्य प्रतीत होता है कि अशुभ कर्मों को छोड़कर शुभ कर्मों की ओर प्रवृत्त हों।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वतंत्र प्राकृत कथा-ग्रंथों में कर्मवाद की अनेक कथाएँ हैं। 'तरंगवती' में पूर्वजन्मों की कथाएँ हैं। तरंगवती को कर्मों के कारण पति-वियोग सहना पड़ता है। 'वसुदेवहिंडी' में तो कर्मफल के अनेक प्रसंग हैं। चारुदत्त की दरिद्रता उसके पूर्वकृत कर्मों का फल मानी जाती है। इस ग्रंथ में वसुभूति दरिद्र ब्राह्मण की कथा होनहार का उपयुक्त उदाहरण है। वसुभूति के यज्ञदत्ता नाम की पत्नी थी। पुत्र का नाम सोमशर्म तथा पुत्री का सोमशर्मा था। उनके रोहिणी नाम की एक गाय थी। दान में मिली हुई खेती करने के लिए थोड़ी सी जमीन थी। एक बार अपनी दरिद्रता को दूर करने के लिए वसुभूति शहर जा रहा था। तो उसने अपने पुत्र से कहा कि मैं साहूकारों से कुछ दान-दक्षिणा माँगकर शहर से लौटूँगा। तब तक तुम खेती की रक्षा करना। उसकी उपज और दान में मिले धन से मैं तेरी और तेरी बहिन की शादी कर दूँगा। तब तक अपनी गाय भी बछड़ा दे देगी। इस तरह हमारे संकट के दिन दूर हो जायेंगे।

ब्राह्मण वसुभूति के शहर चले जाने पर उसका पुत्र सोमशर्म तो किसी नटी के संसर्ग में नट बन गया। आरक्षित खेती सूख गयी। सोमशर्मा पुत्री के किसी धूर्त से गर्भ रह गया और गाय का गर्भ किसी कारण से गिर गया। संयोग से ब्राह्मण को भी दक्षिणा नहीं मिली। लौटने पर जब उसने घर के समाचार जाने तो कह उठा कि हमारा भाग्य ही ऐसा है। इस ग्रंथ में इस तरह के अन्य कथानक भी हैं।

आचार्य हरिभद्र ने प्राकृत की अनेक कथाएँ लिखी हैं। 'समराइच्चकहा' और 'धूर्ताख्यान' के अतिरिक्त उपदेशपद और दशवैकालिकचूर्णि में भी उनकी कई कथाएँ कर्मवाद का प्रतिपादन करती हैं। उनमें कर्म-विपाक अथवा दैवयोग से घटित होने वाले कई कथानक हैं, जिनके आगे मनुष्य की बुद्धि और शक्ति निरर्थक जान पड़ती है। 'समराइच्चकहा' के दूसरे भव में सिंहकुमार की हत्या जब उसका पुत्र आनंद राजपद पाने के लिए करने लगता है तो सिंहकुमार सोचता है कि जैसे अनाज पक जाने पर किसान अपनी खेती काटता है वैसे ही जीव अपने किए हुए कर्मों का फल भोगता है। उपदेशपद में 'पुरुषार्थ' या 'दैव' नाम की एक कथा भी हरिभद्र ने प्रस्तुत की है। इसमें कर्मफल की प्रधानता है।

'कुवलयमाला कहा' में उद्योतनसूरि ने कई प्रसंगों में कर्मों के फल भोगने की बात कही है। कषायों के वशीभूत होकर जीने वाले व्यक्तियों को क्या-क्या भोगना पड़ता है इसका विस्तृत विवेचन लोभदेव आदि की कथाओं में इस ग्रंथ में किया गया है। राजा रत्नमुकुट की कथा में दीपशिखा और पतंगे का दृष्टांत दिया गया है। राजा ने पतंगे को मृत्यु से बचाने के लिए बहुत प्रयत्न किए। अंत में उसे एक संदूकची में बंद भी कर दिया किन्तु प्रातःकाल तक उसे एक

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

छिपकली खा ही गयी। राजा का प्रयत्न कर्म-फल के आगे व्यर्थ गया। उसने सोचा कि निपुण वैद्य रोगी को रोग से रक्षा तो कर सकते हैं किन्तु पूर्वजन्म-कृत कर्मों से जीव की रक्षा वे नहीं कर सकते। यथा :—

वेज्जाकरेंति किरियं ओसह-जीएहिमंत-बल-जुत्ता ।
णेय करेंति वसाया ण कयं जं पुव्वजम्मम्मि ।। कुव० १४०-२५

प्राकृत कथाओं के कोशग्रन्थों में कर्मफल सम्बन्धी अनेक कथाएँ प्राप्त हैं। 'आख्यानमणि कोश' में बारह कथाएँ इस प्रकार की हैं। कर्म अथवा भाग्य के सामर्थ्य के संबन्ध में अनेक सुभाषित इस ग्रन्थ में प्रयुक्त हुए हैं। ऋषिदत्ता आख्यान के प्रसंग में कहा गया है कि कर्मों के अनुसार ही व्यक्ति सुख-दुःख पाता है। अतः किए हुए कर्मों (के परिणाम) का नाश नहीं होता। यथा :—

जं जेण पावियव्वं सुहं व दुक्खं व कम्म निम्मवियं ।
तं सो तहेव पावइ कयस्स नासो जओ नत्थि ।। पृ० २५०, गा० १५१

प्राकृत-कथा-संग्रह में कर्म की प्रधानता वाली कुछ कथाएँ हैं। समुद्रयात्रा के दौरान जब जहाज भग्न हो जाता है तब नायक सोचता है कि किसी को कभी भी दोष न देना चाहिए। सुख और-दुःख पूर्वार्जित कर्मों का ही फल होता है। इसी तरह प्राकृत कथाओं में परीषह-जय की अनेक कथाएँ उपलब्ध हैं। वहाँ भी तपश्चरण में होने वाले दुःख को कर्मों का फल मानकर उन्हें समतापूर्वक सहन किया जाता है। अपभ्रंश के कथाग्रंथों एवं महाकोसु में इस प्रकार की कई कथाएँ हैं। सुकुमाल स्वामी की कथा पूर्व जन्मों के कर्म विपाक को स्पष्ट करने के लिए ही कही गई है। होनहार कितना बलवान है, यह इस कथा से स्पष्ट हो जाता है।

कर्म सिद्धांत सम्बन्धी इन प्राकृत कथाओं के वर्णनों पर यदि पूर्णतः विश्वास किया गया होता और भवितव्यता को ही सब कुछ मान लिया गया होता तो लौकिक और पारलौकिक दोनों तरह के कोई प्रयत्न व पुरुषार्थ जैन धर्म के अनुयायियों द्वारा नहीं किए जाते। इस दृष्टि से यह समाज सबसे अधिक निष्क्रिय, दरिद्र और भाग्यवादी होता। किन्तु इतिहास साक्षी है कि ऐसा नहीं हुआ। अन्य विधाओं के जैन साहित्य को छोड़ भी दें तो यही प्राकृत कथाएँ लौकिक और पारमार्थिक पुरुषार्थों का इतना वर्णन करती हैं कि विश्वास नहीं होता उनमें कभी भाग्यवाद या कर्मवाद का विवेचन हुआ होगा। कर्म और पुरुषार्थ के इस अन्तर्द्वन्द्व को स्पष्ट करने के लिए प्राकृत कथाओं में प्राप्त कुछ पुरुषार्थ सम्बन्धी संदर्भ यहाँ प्रस्तुत हैं।

'ज्ञाताधर्मकथा' में उदकज्ञाता अध्ययन में सुबुद्धि मंत्री की कथा है। इसमें उसने जितशत्रु राजा को एक खाई के दुर्गन्धयुक्त अपेय पानी को शुद्ध एवं पेय

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जल में बदल देने की बात कही। राजा ने कहा—यह नहीं हो सकता। तब मंत्री ने कहा कि पुद्गलों में जीव के प्रयत्न और स्वाभाविक रूप से परिवर्तन किया जा सकता है। राजा ने इस बात को स्वीकार नहीं किया। तब सुबुद्धि ने जल-शोधन की विशेष प्रक्रिया द्वारा उसी खाई के अशुद्ध जल को अमृतसदृश मधुर और पेय बनाकर दिखा दिया। तब राजा की समझ में आया कि व्यक्ति की सद्प्रवृत्तियों के पुरुषार्थ उसके जीवन को बदल सकते हैं। अन्त में राजा और मंत्री दोनों जैन धर्म में दीक्षित हो गये। इसी ग्रंथ में समुद्रयात्रा आदि की कथाएँ भी हैं। जिनसे ज्ञात होता है कि संकट के समय भी साहसी यात्री अपना पुरुषार्थ नहीं त्यागते थे। जहाज भग्न होने पर समुद्र पार करने का भी प्रयत्न करते थे। अनेक कठिनाइयों को पार कर भी वणिकपुत्र सम्पत्ति का अर्जन करते थे।

'उत्तराध्ययन टीका' (नेमीचंद्र) में एक कथा है, जिसमें राजकुमार, मंत्रीपुत्र और वणिकपुत्र अपने-अपने पुरुषार्थ का परीक्षण करके बतलाते हैं। 'दशवैकालिक चूर्णी' में चार मित्रों की कथा में पुरुषार्थों की श्रेष्ठता सिद्ध की गई है। 'वसुदेवहिण्डी' में अर्थ और काम पुरुषार्थ की अनेक कथोपकथाएँ हैं। अर्थोपार्जन पर ही लौकिक सुख आधारित है। अतः इस ग्रंथ की एक कथा में चारुदत्त दरिद्रता को दूर करने के लिए अंतिम क्षण तक पुरुषार्थ करना नहीं छोड़ता। **'उच्छहेसिरिवसति'** इस सिद्धांत का पालना करता है। 'समराइच्चकहा' में लौकिक और पारमार्थिक पुरुषार्थ की अनेक कथाएँ हैं।

उद्योतनसूरि ने 'कुवलयमाला कहा' में एक ओर जहाँ कर्मफल का प्रतिपादन किया है, वहाँ चंडसोम आदि की कथाओं द्वारा यह भी स्पष्ट कर दिया है कि पापी से पापी व्यक्ति भी यदि सद्प्रवृत्ति में लग जाये तो वह सुख-समृद्धि के साथ जीवन के अन्तिम लक्ष्य को भी प्राप्त कर सकता है। मायादत्त की कथा में कहा गया है कि लोक में धर्म, अर्थ, और काम इन तीन पुरुषार्थों में से जिसके एक भी नहीं है, उसका जीवन जड़वत् है। अतः अर्थ का उपार्जन करो, जिससे शेष पुरुषार्थ की सिद्धि हो (कुव० ५८. १३-१५)। सागरदत्त की कथा से ज्ञात होता है कि बाप-दादाओं की सम्पत्ति से परोपकार करना व्यर्थ है। जो अपने पुरुषार्थ से अर्जित धन का दान करता है वही प्रशंसा का पात्र है, बाकी सब चोर हैं :—

जो देई धणं दुहसय समज्जियं अत्तणो भुय-बलेण ।
सो किर पसंसणिज्जो इयरो चोरो विय वराओ ।। कुव० १०३-२३ ।।

इसी तरह इस ग्रंथ में धनदेव की कथा है। वह अपने मित्र भद्रश्रेष्ठी को प्रेरणा देकर व्यापार करने के लिए रत्न-दीप ले जाना चाहता है। भद्र श्रेष्ठी इसलिए वहाँ नहीं जाना चाहता क्योंकि वह सात बार जहाज भग्न होजाने से

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

निराश हो चुका था। तब धनदत्त उसे समझाता है कि पुरुषार्थ-हीन होने से तो लक्ष्मी विष्णु को भी छोड़ देती है और जो पुरुषार्थी होता है उसी पर वह दृष्टि-पात करती है। अतः तुम पुनः साहस करो। व्यक्ति के लगातार प्रयत्न करने पर ही भाग्य बदला जा सकता है।

प्राकृत के अन्य कथा-ग्रंथों में भी इस प्रकार की पुरुषार्थ सम्बन्धी कथाएँ देखी जा सकती हैं। श्रीपाल-कथा कर्म और पुरुषार्थ के अन्तर्द्वन्द्व का स्पष्ट उदाहरण है। मैना-सुन्दरी अपने पुरुषार्थ के बल पर अपने दरिद्र एवं कोढ़ी पति को स्वस्थ कर पुनः सम्पत्तिशाली बना देती है। प्राकृत के ग्रंथों में इस विषयक एक बहुत रोचक कथा प्राप्त है। राजा भोज के दरबार में एक भाग्यवादी एवं पुरुषार्थी व्यक्ति उपस्थित हुआ। भाग्यवादी ने कहा कि—सब कुछ भाग्य से होता है, पुरुषार्थ व्यर्थ है। पुरुषार्थी ने कहा—प्रयत्न करने से ही सब कुछ प्राप्त होता है, भाग्य के भरोसे बैठे रहने से नहीं। राजा ने कालिदास नामक मंत्री को उनका विवाद निपटाने को कहा। कालिदास ने उन दोनों के हाथ बाँधकर उन्हें एक अंधेरे कमरे में बंद कर दिया और कहा कि आप लोग अपने-अपने सिद्धान्त को अपनाकर बाहर आ जाना। भाग्यवादी निष्क्रिय होकर कमरे के एक कोने में बैठा रहा जबकि पुरुषार्थी तीन दिन तक कमरे से निकलने का द्वार खोजता रहा। अंत में थककर वह एक स्थान पर गिर पड़ा। जहाँ उसके हाथ थे वहाँ चूहे का बिल था, अतः उसके हाथ का बंधन चूहे ने काट दिया। दूसरे दिन वह किसी प्रकार दरवाजा तोड़कर बाहर आ गया। बाद में वह भाग्यवादी को भी निकाल लाया और कहने लगा कि उद्यम के फल को जानकर यावत्-जीवन उसे नहीं छोड़ना चाहिए। पुरुषार्थ फलदायी होता है।

उज्जमस्स फलं नच्चा, विउसदुगनायगे।
जावज्जीवं न छुड्डेज्जा, उज्जमंफलदायगं॥

यहाँ इस विषय से सम्बन्धित पाँच प्रमुख कथाएँ दी जा रही हैं।

उनसे कर्म एवं पुरुषार्थ के स्वरूप को समझने में मदद मिलती है।

[१]

आटे का मुर्गा

☐ डॉ० प्रेम सुमन जैन

यौधेय नामक जनपद की राजधानी राजपुर के चण्डमारी देवी के मन्दिर के सामने बलि देने के लिए छोटे-बड़े पशुओं के कई जोड़े एकत्र कर दिये गये हैं। एक मनुष्य-युगल की प्रतीक्षा है। राजा मारिदत्त के राज्य-कर्मचारियों ने

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

एक सुन्दर नर-युगल को लाकर वहाँ उपस्थित किया—साधुवेश में एक युवा साधु और एक युवा साध्वी। सिर पर मृत्यु होते हुए भी चेहरे पर अपूर्व सौम्यता, करुणा और तेज। उनके सामने बलि देने वाले राजा की तलवार अचानक नीचे झुक गयी। कौतूहल जग गया। यह नर-युगल कौन हैं? राजा ने पूछा—'बलि देने के पूर्व मैं आपका परिचय जानना चाहता हूँ।' नर-युगल के मुनि कुमार ने जो परिचय दिया वह इस प्रकार है।

अवन्ति नामक जनपद में उज्जयिनी नगरी है। वहाँ यशोधर राजा अपनी रानी अमृतमति के साथ निवास करता था। एक रात्रि में यशोधर ने रानी अमृतमति को एक महावत के साथ विलास करते देख लिया। पतन की इस पराकाष्ठा से राजा का मन संसार से विरक्त हो गया। प्रातःकाल जब उसके उदास मन का राजमाता चन्द्रमति ने कारण पूछा तो यशोधर ने एक दुःस्वप्न की कथा गढ़ दी। किन्तु राजमाता से राजा के दुःख की गहरायी छिपी न रही। अतः उसने अपने पुत्र के मन की शान्ति के लिए कुलदेवी चंडमारी के मंदिर में पशु-बलि देने का आग्रह किया। किन्तु यशोधर पशु-बलि के पक्ष में नहीं हुआ। तब माता ने उसे सुझाया कि आटे का मुर्गा बनाकर उसकी बलि दी जा सकती है। यशोधर ने विवश होकर यह प्रस्ताव मान लिया। किन्तु इस शर्त के साथ कि इस बलिकर्म के बाद वह अपने पुत्र यशोमति को राज्य देकर विरक्त हो जायेगा।

रानी अमृतमति ने जब यह सब जाना तो उसे ज्ञात हुआ कि रात्रि में महावत के साथ किये गये विलास को राजा जान गया है। राजमाता भी इसको जानती होगी। अतः अब दोनों को रास्ते से हटाना होगा। अतः उसने अपनी चतुराई से राजा और राजमाता को उसी दिन अपने यहाँ भोजन पर आमन्त्रित किया और उसी दिन बलि चढ़ाये हुए उस आटे के मुर्गे में विष मिलाकर प्रसाद के रूप में मां और पुत्र को उसने खिला दिया। इससे यशोधर और उसकी मां चन्द्रमति दोनों की मृत्य हो गयी।

संकल्पपूर्वक की गयी आटे के मुर्गे की हिंसा के कारण तीव्र कर्मबन्ध हुआ। उसके कारण वे दोनों मां-बेटे छः जन्मों तक पशु-योनि में भटकते रहे। कुत्ता, हिरण, मछली, बकरा, मुर्गा आदि के जन्मों को पार करते हुए उन्हें संयोग से सुदत्त नामक आचार्य के उपदेश से अपने पूर्व-जन्म का स्मरण हो आया। उससे पश्चात्ताप की अग्नि ने उनके कुछ दुष्कर्मों को जला दिया। अतः अगले जन्म में वे दोनों यशोमति राजा और कुसुमावलि रानी के यहाँ भाई-बहिन के रूप में उत्पन्न हुए। संयोगवश उन्हीं आचार्य सुदत्त से जब यशोमति ने अपने पूर्वजों का वृत्तान्त पूछा तो ज्ञात हुआ कि उसके पिता यशोधर एवं पितामही चन्द्रमति उसके यहाँ पुत्र एवं पुत्री के रूप में पैदा हुए हैं। यह कथा

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सुनकर उन दोनों बालकों को बचपन में ही संसार का स्वरूप समझ में आ गया। अतः वे बाल्यावस्था में ही साधु एवं साध्वी बन गये।

'हे राजा मारिदत्त ! हम दोनों साधु-साध्वी यशोमति के वही पुत्र-पुत्री हैं। हमने आटे के मुर्गे की बलि चढ़ाकर जो संसार के दुःख उठाये हैं, उन्हें तुम्हारे सामने कह दिया है। अब तुम्हारी इच्छा कि तुम हमारे साथ इन निरपराधी मूक पशुओं की बलि दो या नहीं।' राजा मारिदत्त यह वृत्तान्त सुनकर मुनि युगल के चरणों में गिर पड़ा और उसने निवेदन किया कि हमारे द्वारा किए गए अपमान को क्षमा करें भगवन् ! हमें भी अपने उस कल्याण मित्र गुरु के पास ले चलें।[1]

[२]

सियारिनी का बदला

☐ डॉ० प्रेम सुमन जैन

जम्बू द्वीप के भरतक्षेत्र में उज्जयिनी नगरी है। वहाँ सुभद्र सेठ अपनी पत्नी जया के साथ रहता था। उनके धन-धान्य एवं अन्य सुखों की कमी नहीं थी। किन्तु कोई संतान न होने से वे दोनों दुःखी थे। कुछ समय बाद उनके एक पुत्र हुआ, जो अत्यन्त सुकुमार था अतः उसका नाम सुकुमाल रख दिया गया। किन्तु कर्मों का कुछ ऐसा संयोग कि पुत्र-दर्शन के बाद ही सेठ ने दीक्षा ले ली। अतः जया सेठानी बहुत दुःखी हुई। उसने एक ज्ञानी मुनि से अपने पुत्र के भविष्य के सम्बन्ध में पूछा। मुनि ने कहा—'सुकुमाल को संसार के सब सुख मिलेंगे। किन्तु जब कभी भी किसी मुनि के उपदेश इसके कानों में पड़ेंगे तब यह मुनि बन जायेगा।' यह सुनकर जया सेठानी ने अपने महल के चारों ओर ऐसी व्यवस्था कर दी कि दूर-दूर तक किसी मुनि का आगमन न हो और न ही उनके उपदेश सुनाई पड़ें।

समय आने पर जया सेठानी ने सुकुमाल का ३२ कुमारियों से विवाह कर दिया। उनके सबके अलग-अलग महल बनवा दिये। वहाँ सुख-सुविधाओं के सभी साधन उपलब्ध करा दिये ताकि सुकुमाल को कभी भी उन महलों की परिधि से बाहर न आना पड़े।

एक बार जया सेठानी की समृद्धि और सुकुमाल की सुकुमारता की प्रसिद्धि सुनकर उस नगर का राजा सेठानी के घर आया। जया सेठानी ने राजा का पूरा सत्कार किया एवं उसे अपने पुत्र से मिलाया। उसके साथ भोजन

१. दशवीं शताब्दी के यशस्तिलकचम्पू की प्रमुख कथा का संक्षिप्त रूपान्तर।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

कराया। किन्तु इस बीच राजा ने अनुभव किया कि सुकुमाल की आँखों में आंसू आये। वह सिंहासन पर अधिक देर तक ठीक से बैठ नहीं सका। भोजन करते समय भी उसने केवल कुछ चावलों को चुन-चुनकर ही खाया। अतः राजा ने सेठानी से इस सबका कारण पूछा। सेठानी ने कहा—"महाराज! मेरा पुत्र बहुत सुकुमार है! उसने कभी दिये का प्रकाश नहीं देखा! जब मैंने आपको दिये से आरती की तो उसकी लौ से कुमार के आंसू आ गये। जब मैंने सरसों के दाने आपके ऊपर डालकर आपका सत्कार किया तो सरसों के दाने सिंहासन पर गिर जाने से उनकी चुभन से वह ठीक से आपके साथ नहीं बैठ सका। और सुकुमाल केवल कमल से सुवासित कुछ चावलों का ही भोजन करता है। इसलिए उसने उन्हीं चावलों को बीन-बीन कर खाया है। आप उसकी बातों का बुरा न मानें।"

राजा, सुकुमाल की सुकुमारता से और सेठानी के सत्कार से बहुत प्रभावित हुआ। उसने सेठानी की सहायता करते हुए सारे नगर में मुनियों के आगमन पर प्रतिबन्ध लगा दिया। सेठानी अपने पुत्र की सुरक्षा से निश्चिन्त हो गयी।

किन्तु संयोग से सुकुमाल के पूर्वजन्म के मामा मुनि सूर्यमित्र ने अपने ज्ञान से जाना कि सुकुमाल की आयु अब केवल तीन दिन शेष रह गयी है। अतः वे राजाज्ञा की चिन्ता न करते हुए नगर के बाहर सेठानी के महल के बगीचे के समीप में आकर ठहर गये। वहीं पर वे श्रावकों को उपदेश देने लगे।

एक दिन प्रातःकाल सुकुमाल अपने महल की छत पर भ्रमण कर रहा था कि उसने मुनि के उपदेश सुन लिये। उसे अपने पूर्व-जन्म का स्मरण हो आया। अतः उसने मुनिदीक्षा लेने का निश्चय कर लिया। सुकुमाल चुपचाप अपने महल से रस्सी के सहारे नीचे उतरा और पैदल चलते हुए मुनि के समीप पहुँचकर उसने दीक्षा ले ली। और आयु कम जानकर वह तपस्या में लीन हो गया।

सुकुमाल की सुकुमारता के कारण महल से लेकर पूरे रास्ते में सुकुमाल के पैरों से रक्त बहने के कारण पैरों के निशान बनते चले गये। नगर के बाहर उस समय एक सियारिनी अपने बच्चों के साथ घूम रही थी। वह रक्त के निशान के साथ-साथ चलती हुई मुनि सुकुमाल के पास पहुँच गयी। वहाँ उसे अपने पूर्व-जन्म का स्मरण हो आया। तब वह बदला लेने की भावना से सुकुमाल के शरीर को खाने लग गयी। किन्तु वे मुनि परीषह को सहन करते हुए अपनी तपस्या में लीन रहे और उन्होंने शरीर का त्याग करते हुए केवलज्ञान प्राप्त किया।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इधर सेठानी के घर में सुकुमाल के निष्क्रमण का समाचार मिलते ही सब परिजन नगर के बाहर दौड़े। जब तक वे मुनि सुकुमाल के समीप पहुँचे तब तक उस सियारिनी द्वारा उनका भौतिक शरीर खाया जा चुका था। इस दृश्य को देखकर सारे लोग स्तब्ध रह गये। तब सुकुमाल के दीक्षा गुरु सूर्यमित्र ने उनकी शंका का समाधान करते हुए उन्हें सुकुमाल और सियारिनी के पूर्व-जन्म की कथा इस प्रकार सुनायी।

"इसी भरतक्षेत्र में कौशाम्बी नगरी है। वहाँ अतिबल राजा अपनी मदनावली रानी के साथ राज्य करता था। उसके यहाँ सोमशर्मा नामक मन्त्री था। उसके काश्यपी नामक पत्नी थी। उनके दो पुत्र थे—अग्निभूति और वायुभूति। पिता की मृत्यु के बाद माता काश्यपी ने अपने दोनों पुत्रों को पढ़ने के लिए उनके मामा सूर्यमित्र के पास उन्हें राजगृही भेजा। सूर्यमित्र ने मामा-भानजे के सम्बन्ध को छिपाकर रखा और उन्हें अच्छी शिक्षा दी। किन्तु जब दोनों पुत्रों को इस सम्बन्ध की जानकारी मिली तो अग्निभूति ने सोचा कि मामा ने हमारे हित के लिए ऐसा किया। अन्यथा हम पढ़ न पाते। किन्तु वायुभूति ने इसे अपना अपमान समझा और वह मामा सूर्यमित्र को अपना शत्रु मानने लगा।

एक बार सूर्यमित्र मुनि के रूप में कौशाम्बी में आये। तब अग्निभूति ने उनका बहुत सत्कार किया, किन्तु वायुभूति ने उनका अपमान किया। इससे दुःखी होकर अग्निभूति को भी संसार की असारता का ज्ञान हो गया। उसने भी सूर्यमित्र के पास मुनिदीक्षा ले ली। जब यह बात अग्निभूति की पत्नी सोमदत्ता को ज्ञात हुई तो वह बहुत चिन्तित हुई। उसने अपने देवर वायुभूति से बड़े भ्राता अग्निभूति को घर लौटा लाने का अनुरोध किया। इससे वायुभूति और क्रोधित हो गया। उसने अपनी भौजाई सोमदत्ता के सिर पर अपने पैरों से प्रहार कर दिया। इससे सोमदत्ता बहुत दुःखी हुई। उसने कहा कि मैं अभी अबला हूँ। इसलिए तुमने मुझे लातों से मारा है। किन्तु मुझे जब अवसर मिलेगा मैं तुम्हारे इन्हीं पैरों को नोंच-नोंचकर खाऊँगी। इस निदान के उपरान्त सोमदत्ता मृत्यु को प्राप्त हो गई। वहाँ से अनेक जन्मों में भटकती हुई आज वह यहाँ इस सियारिनी के रूप में उपस्थित है।

उधर वायुभूति का जीव भी मरकर नरक में गया। वहाँ से निकलकर पशु-योनि में भटका। जन्मान्ध चाण्डाली हुआ। फिर मुनि-उपदेश पाकर ब्राह्मण पुत्री नागश्री के रूप में पैदा हुआ। वहाँ उसने व्रतों का पालन कर इस नगर में जया सेठानी के यहाँ सुकुमाल के रूप में जन्म लिया। शुभ कर्मों के उदय से सुकुमाल ने मुनि दीक्षा ली। किन्तु अशुभ कर्मों के उदय से उन्हें इस सियारिनी द्वारा दिया गया यह उपसर्ग सहना पड़ा है।"

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सूर्यमित्र मुनि द्वारा इस वृत्तान्त को सुनकर जया सेठानी ने संतोष धारण किया एवं पूरे परिवार ने गृहस्थों के व्रत धारण किये।[1]

[३]

जादुई बगीचा

☐ डॉ० प्रेम सुमन जैन

जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में धनधान्य से युक्त कुसट्ट नामक देश है। उसमें बलासक नामक गाँव है, जहाँ सब कुछ है, किन्तु दूर-दूर तक पेड़ों की छाया नहीं है। ऐसे इस गाँव में विद्वान् अग्निशर्मा ब्राह्मण रहता था। उसके अग्निशिखा नामक शीलवती पत्नी थी। उन दोनों के अत्यन्त सुन्दर विद्युत्प्रभा नामक पुत्री थी। तीनों का समय सुख से व्यतीत होता था।

अचानक जब विद्युत्प्रभा आठ वर्ष की हुई तब भयंकर रोग से पीड़ित होकर उसकी माँ का निधन हो गया। इससे घर का सारा कार्य विद्युत्प्रभा पर आ पड़ा। एक दिन सुबह से शाम तक वह कार्य करते-करते जब ऊब गयी तो उसने अपने पिता से सौतेली मां ले आने को कहा, जिससे उसे कुछ राहत मिल सके। किन्तु दुर्भाग्य से सौतेली मां ऐसी आयी कि वह घर का कुछ भी काम नहीं करती थी। इससे विद्युत्प्रभा का दुःख और बढ़ गया। उसे काम तो पूरा करना पड़ता, किन्तु भोजन बहुत कम मिलता। इसे वह अपने कर्मों का फल मानकर दिन व्यतीत करने लगी।

एक दिन विद्युत्प्रभा गायों को चराने के लिए जंगल में गयी थी। थककर वह दोपहर में वहाँ पर सो गयी। तब एक बड़ा साँप उसके पास आया। वह मनुष्य की भाषा में विद्युत्प्रभा से बोला कि मुझे तुम ओढ़नी से ढककर अपनी गोद में छिपा लो, कुछ सपेरे मेरे पीछे पड़े हुए हैं, उनसे मुझे बचा लो। विद्युत्प्रभा ने बड़े साहस से करुणापूर्वक उस नाग की रक्षा की। इससे संतुष्ट होकर नाग अपने असली रूप में आकर देवता बन गया। उसने विद्युत्प्रभा से एक वर मांगने को कहा। विद्युत्प्रभा ने लालच के बिना केवल इतना वर मांगा कि मेरी गायों को और मुझे धूप न लगे इसलिए मेरे ऊपर तुम कोई छाया कर दो। उस नागकुमार देवता ने तुरन्त विद्युत्प्रभा के सिर पर एक सुन्दर बगीचा बना दिया और कहा—'यह बगीचा तुम्हारी इच्छा से छोटा-बड़ा होकर हमेशा

---

१. १२वीं शताब्दी की अपभ्रंश कथा 'सुकुमालचरिउ' (श्रीधर कृत) का संक्षिप्त रूपान्तर।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

साथ रहेगा। इसके अलावा भी तुम्हें कभी कोई संकट हो तो मुझे याद करना। मैं तुम्हारी मदद करूँगा' ऐसा कहकर वह नागकुमार चला गया।

एक दिन जब विद्युत्प्रभा जंगल में अपने बगीचे के नीचे सो रही थी। तब वहाँ पाटलिपुत्र का राजा जितशत्रु अपनी सेना के साथ आया। उसने इस जादुई बगीचे के साथ सुन्दर विद्युत्प्रभा को देखकर उससे विवाह कर लिया। राजा ने विद्युत्प्रभा का नाम बदलकर 'आराम शोभा' रख दिया और उसे अपनी पटरानी बना दिया। इस प्रकार आराम शोभा के दिन सुख से बीतने लगे।

इधर आरामशोभा की सौतेली माता के एक पुत्री उत्पन्न हुई और वह क्रमशः युवा अवस्था को प्राप्त हुई। तब उसकी माता ने विचार किया कि राजा मेरी पुत्री को भी रानी बना ले ऐसा कोई उपाय करना चाहिए। उसकी सौतेली मां ने कपटपूर्ण अपनत्व दिखाकर आरामशोभा को मारने के लिए अपने पति अग्निशर्मा के साथ तीन बार विषयुक्त लड्डू बनाकर भेजे। किन्तु उस नागकुमार की सहायता से वे लड्डू विषरहित हो गये। तब उस सौतेली मां ने प्रथम प्रसव कराने के लिए आरामशोभा को अपने घर बुलवाया। वहाँ आरामशोभा ने एक पुत्र को जन्म दिया। तभी उस सौतेली मां ने आरामशोभा को धोखे से घर के पिछवाड़े के कुए में डाल दिया और समझ लिया कि आरामशोभा मर गयी है। किन्तु वहाँ उस नागकुमार ने आरामशोभा के लिए कुए के भीतर ही एक महल बना दिया।

इधर उस सौतेली मां ने अपनी पुत्री को आरामशोभा के स्थान पर राजा की रानी बनाकर उसके पुत्र के साथ पाटलिपुत्र भेज दिया। किन्तु इस नकली आरामशोभा के साथ उस जादुई बगीची के न होने से राजा को शंका हो गयी। वह चुपचाप असली बात की खोज में रहने लगा। उधर पुत्र और पति के शोक से दुःखी आरामशोभा नागकुमार की सहायता से रात्रि में अपने पुत्र को देखने चुपके-से राजमहल में जाने लगी। किन्तु उसे सुबह होने के पहले ही लौटना पड़ता था। अन्यथा उसका जादुई बगीचा हमेशा के लिए नष्ट हो जायेगा। किन्तु एक दिन राजा ने असली आरामशोभा को पकड़ लिया और सारी बातें जान लीं। तभी वह जादुई बगीचा नष्ट हो गया। किन्तु आरामशोभा अपने पुत्र और पति से मिलकर संतुष्ट हो गयी। राजा ने आरामशोभा की सौतेली मां और पुत्री को सजा देनी चाही तो आरामशोभा ने उन्हें माफ करा दिया।

एक दिन राजा के साथ वार्तालाप करते हुए आरामशोभा ने प्रश्न किया कि मुझे बचपन में इतने दुःख क्यों मिले और बाद में राजमहल के सुख मिलने का क्या कारण है? जादुई बगीचे ने मेरी सहायता क्यों की? तब राजा आरामशोभा को एक सन्त के पास ले गया। उससे उन्होंने अपनी जिज्ञासा का

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

समाधान करना चाहा। तब उन परमज्ञानी साधु ने आरामशोभा के पूर्वजन्म को संक्षेप में इस प्रकार कहा—

"इस जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में चंपानगरी है। वहाँ कुलधर नामक एक सेठ था। उसकी पत्नी का नाम कुलानन्दा था। उनके आठ पुत्रियां हुईं। आठवीं का नाम दुर्भागी रखा गया। बहुत समय तक उसका विवाह नहीं हुआ। किन्तु संयोग से एक बार कोई परदेशी युवक सेठ कुलधर की दुकान पर आया। किसी प्रकार सेठ ने उस युवक के साथ दुर्भागी का विवाह कर दिया। किन्तु अपने घर को वापिस लौटते हुए वह युवक दुर्भागी को अकेला सोता हुआ छोड़कर भाग गया। जागने पर दुर्भागी को बहुत दुःख हुआ। किन्तु इसे भी अपने कर्मों का फल मानती हुई वह किसी प्रकार उज्जयिनी के मणिभद्र सेठ के यहाँ पहुँच गयी। वहाँ उसने अपने शील और व्यवहार से सेठ के परिवार का दिल जीत लिया। वह सेठ के धार्मिक कार्यों में भी मदद करने लगी। उसे जो भी पैसे सेठ से मिलते उसकी सामग्री खरीदकर वह गरीबों में बांट देती। उसका सारा समय देवपूजा और गुरुपूजा में ही व्यतीत होने लगा।

अचानक मंदिर में लगा हुआ बगीचा सूखने लगा। सेठ ने बहुत उपाय किये, किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। तब दुर्भागी ने इस कार्य को अपने ऊपर लिया और प्रतिज्ञा की कि जब तक यह बगीचा हरा-भरा नहीं हो जायेगा तब तब वह अन्न ग्रहण नहीं करेगी। उसकी इस तपस्या से शासनदेवी प्रसन्न हुई और उसने बगीचे को हरा-भरा कर दिया। इससे दुर्भागी का मन धर्म में और रम गया। वह कठोर तपस्याएँ करने लगी। अन्त में उसने आत्म-चिंतन करते हुए अपने प्राण त्यागे। वहाँ से वह स्वर्ग में उत्पन्न हुई। वहाँ पर भी धर्म-भावना के प्रति रुचि होने के कारण उसे मनुष्य जन्म मिला और वह अग्निशर्मा ब्राह्मण के घर विद्युत्प्रभा नाम की पुत्री हुई।

उस दुर्भागी ने अपने जीवन का पूर्वभाग सदाचार रहित परिवार में व्यतीत किया था, अतः उसके विचारों और कार्यों में सद्भावना नहीं थी। इससे उसने दुष्कर्मों का संचय किया। उन्हीं के कारण उसे विद्युत्प्रभा के जीवन में प्रारम्भ में बहुत दुःख भोगने पड़े हैं। किन्तु दुर्भागी का अंतिम जीवन एक धार्मिक परिवार में व्यतीत हुआ। उसने स्वयं धार्मिक साधना की। इसलिए आरामशोभा के रूप से उसे राजमहलों का सुख मिला। गरीबों को दान देने और बगीचा हरा-भरा करने के कारण से आरामशोभा को जादुई बगीचे का सुख मिला है। और अब महारानी आरामशोभा धार्मिक चिन्तन कर रही है तथा उसके अनुरूप अपना जीवन व्यतीत करेगी तो वह स्वर्गों के सख को भोग-कर क्रमशः मोक्षपद भी पा सकेगी।"

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानी सन्त के इन वचनों को सुनकर जितशत्रु राजा और आरामशोभा रानी ने संसार-त्याग कर वैराग्य जीवन अंगीकार किया ।[1]

[४]

दो साधक जो बिछुड़ गये

☐ श्री सुजानमल मेहता

साधना, त्याग और तपश्चर्या का लक्ष्य कर्म-निरोध और कर्म-निर्जरा है और अन्ततः अपने शुद्ध स्वरूप को प्रकट कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होना है। साधकों को ऋद्धि-सिद्धियाँ भी प्राप्त होती हैं किन्तु अगर कोई साधक भौतिक चकाचौंध में फंस कर प्राप्त ऋद्धि-सिद्धियों का लक्ष्य भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त करना बना लेता है तो वह अमृत में विष घोल देता है और परिणामतः अवनति के गहरे कूप में चला जाता है। ऐसे ही साधकों के लिये कहा जाता है 'तपेश्वरी सो राजेश्वरी और राजेश्वरी सो नरकेश्वरी।'

कांपिल्य नगर में जन्मे चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ने भी अपने पूर्व भव में उत्कृष्ट साधना की थी और इसी कारण वे छः खण्ड के अधिपति बने थे। भौतिक ऋद्धि सम्पदा उनके आंगन में कील्लोलें करती थीं, सुन्दर और मनोहर रानियों से उनका अन्तःपुर सुशोभित था और सांसारिक काम भोगों को उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया था। इतना कुछ होते हुये भी वे अपने जीवन में रिक्तता का अनुभव करते थे। वे अपने अन्तर में एक टीस अनुभव करते थे मानो उनका एक अनन्य प्रेमी बिछुड़ गया हो। इस गहरी चिन्ता ही चिन्ता में उनको अपने पूर्व भवों की स्मृति (जातिस्मरण ज्ञान) हो गयी। उनकी स्मृति अपने पूर्व के लगातार पाँच भवों तक पहुँच गई और स्मरण हो गया कि वे दो भाई थे जो साथ-साथ जन्म लेते थे और मृत्यु को प्राप्त होते थे। प्रथम भव में वे दशार्ण देश में दास के रूप में थे, दूसरे भव में वे कालिंजर पर्वत पर मृग के रूप में थे, तीसरे भव में मातृ गंगा नदी के तट पर हंस के रूप में थे और चौथे भव में काशी नगर में एक चाण्डाल के घर में चित्त और संभूति के रूप में जन्मे थे।

काशी नरेश के नमूची नाम का प्रधान था, जो बड़ा बुद्धिमान और संगीत शास्त्री था, साथ ही था महान् व्यभिचारी। उसने राज्य-अन्तःपुर में भी इस दोष का सेवन किया, परिणामतः राजा ने उसको मृत्यु दण्ड दे दिया। फांसी के तख्ते पर चढ़ाते समय बधिक (चित्त और संभूति के पिता) को दया आ गई

१. १२वीं शताब्दी की प्राकृत कथा 'आरामसोहा' का संक्षिप्त रूपान्तर।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

और उसने उसको मृत्यु से बचाकर अपने घर में गुप्त रूप से रख लिया। दोनों भाई चित्त और संभूति नमूची से संगीत विद्या सीखने लगे और पारंगत हो गये। जिसकी बुरी आदत पड़ जाती है वह कहीं नहीं चूकता। नमूची ने चाण्डाल के घर में भी व्यभिचार का सेवन किया और उसको प्राण लेकर चुपचाप भागना पड़ा।

चित्त और संभूति की संगीत विद्या की ख्याति देश-देशान्तर में फैलने लगी। काशी के संगीत शास्त्रियों को चाण्डाल कुलोत्पन्न भाइयों की ख्याति सहन नहीं हो सकी और उन्होंने येन-केन प्रकारेण दोनों भाइयों को देश निकाला दिलवा दिया। इस घोर अपमान को दोनों भाई सहन नहीं कर सके और अपमानित जीवन के बजाय मृत्यु को वरण करना उन्होंने श्रेयस्कर समझा और पर्वत शिखर से छलांग मारकर मृत्यु का आलिंगन करने का संकल्प उन्होंने कर लिया। अपने विचारों को वे कार्य रूप में परिणत कर ही रहे थे कि अकस्मात एक निर्ग्रन्थ मुनि उधर आ निकले। मुनि ने ऐसा दुष्कृत्य करने से उनको रोका और आत्म-हत्या एक भयंकर पाप है, यह समझाते हुये मानव-जीवन को सार्थक बनाने का उपदेश दिया। मुनि के उपदेश ने उनमें से हीन भावना को निकाल दिया और उन दोनों ने मुनिराज का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। मुनि के पास ज्ञान-ध्यान में निपुण होने के बाद गुरु आज्ञा से वे स्वतंत्र विचरण करने लगे। विचरण करते हुये साधना के बल से उनको अनेक ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ प्राप्त हो गईं।

उधर नमूची प्रधान चाण्डाल घर से भागकर लुकते-छिपते हस्तिनापुर नगर पहुँच गया और अपने बुद्धि-कौशल से चक्रवर्ती सनतकुमार का प्रधान मंत्री बन गया। मुनि चित्त संभूति भी विचरण करते हुये हस्तिनापुर नगर के बाहर उद्यान में बिराजे। मुनि वेष में चित्त और संभूति को देखकर नमूची प्रधान ने भयभीत होकर समझा कि कहीं मेरा सारा भेद खुल न जावे, इस लिये षडयंत्र करके उसने उनका (मुनियों का) अपमान करत हुये शहर निकाला देने की आज्ञा दिलवादी।

चित्त मुनि ने तो इस अपमान को शान्तिपूर्वक सहन कर लिया किन्तु संभूति मुनि को यह अपमान और तिरस्कार सहन नहीं हो सका और वे इसका प्रतिशोध लेने के लिये तपश्चर्या के प्रभाव से प्राप्त सिद्धि का प्रयोग करने के लिये तत्पर हो गये। चित्त मुनि ने संभूति मुनि को त्यागी जीवन की मर्यादा को समझाते हुये शान्ति धारण करने के लिये कहा किन्तु संभूति मुनि का क्रोध शान्त नहीं हुआ और कुपित होकर वे अपने मुंह से धुआँ के गोले निकालने लगे। नगरवासी यह देखकर घबरा गये और अपने महाराज चक्रवर्ती सनतकुमार से इस भयंकर संकट को निवारण करने की प्रार्थना करने लगे। चक्रवर्ती

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

सनतकुमार सपरिवार ससैन्य मुनि की सेवा में उपस्थित हुये और प्रशासन की भूल के लिये क्षमा याचना की। तपस्वी मुनि का क्रोध शान्त हुआ और उन्होंने अपनी लब्धि के प्रयोग को समेट लिया किन्तु चक्रवर्ती की ऋद्धि सम्पदा, राज-रानियों के रूप-सौन्दर्य को देखकर वे आसक्त बन गये और यह दुस्संकल्प कर लिया कि मेरे इस त्याग तपश्चर्या का फल मिले तो मुझे भी भविष्य में ऐसा ही ऐश्वर्य और काम भोगों के साधन प्राप्त हों। चित्त मुनि ने मुनि संभूति की भावभंगी को देखकर इस प्रकार के निदान करने के दुःष्परिणाम से अवगत कराया किन्तु मुनि संभूति पर इसका कोई असर नहीं हुआ।

चक्रवर्ती सनतकुमार मुनियों के दर्शन कर अपने आपको धन्य मानते हुये त्याग वैराग्य की अमिट छाप अपने हृदय में लेकर अपने महलों की ओर प्रस्थान कर गये। दोनों मुनियों ने यथासमय आयुष्य पूर्ण कर देव लोक के पद्मगुल विमान में जन्म लिया।

देवलोक की आयुष्य पूर्ण कर मुनि संभूति ने कांपिल्य नगर में चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त के रूप में जन्म लिया किन्तु उसका भाई चित्त देवायु पूर्ण कर कहाँ गया, इसको जानने के लिये ब्रह्मदत्त चिंतित हो गये। राज्य वैभव और भोगोप-भोग की प्रचुर सामग्री उपलब्ध होते हुये भी उसको अपने पूर्व भव के भाई की विरह वेदना सताने लगी। आखिर उसने अपने भाई को खोजने का एक उपाय निकाल लिया। उसने एक आधी गाथा बनाई—"असि दासा, मिगा, हँसा, चाण्डाला अमरा जहा"—और देश-देशान्तरों में यह उद्घोष करा दिया कि जो कोई इस अर्ध गाथा को पूर्ण कर देगा उसको चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त अपना आधा राज्य देगा।

चित्त मुनि देवायु पूर्ण कर पुरमिताल नगर में धनपति नगर श्रेष्ठि के घर में पुत्र रूप में उत्पन्न हुए। अपने पूर्व भव की त्याग-तपश्चर्या के प्रभाव से अतुल ऋद्धि सम्पदा और भोगोपभोग की प्रचुर सामग्री के स्वामी बने। एक दिन किसी महात्मा के मुखारविन्द से एक गम्भीर गाथा सुनकर उसके अर्थ का चिन्तन करते-करते उनको जाति स्मरण ज्ञान हो गया। पूर्व त्याग-वैराग्य के संस्कार जागृत हुये और भोगविलाप की सामग्री को सर्प कांचलीवत छोड़कर त्याग-मार्ग को अंगीकार करते हुये विचरण करने लगे। साधना करते हुये उनको अवधि ज्ञान प्रकट हो गया। ग्रामानुग्राम विचरते हुये वे कांपिल्य नगर के बाहर उद्यान में बिराजे और माली को पूर्वोक्त अर्धगाथा उच्चारण करते हुये सुना। चित्त मनि अवधि ज्ञान के बल से अर्ध गाथा का प्रयोजन समझ गये और "इमाणी छट्ठियाँ जायी अन्नमन्नेख जा विणा" यह कहकर अर्धगाथा को पूर्ण कर दिया।

उद्यान का माली हर्षित होते हुये राज्य सभा में गया और उस अर्धगाथा

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

को पूर्ण करके सुना दिया। चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त अपने पूर्व भव के भाई को माली के रूप में समझ कर खेद खिन्न होकर मूर्छित हो गया। राजपुरुषों ने माली को पकड़ लिया और त्रास देने लगे तो माली ने सही स्थिति बतला दी। राजपुरुष मुनि की सेवा में उपस्थित हुये और राजा के मूर्छित होने की बात कहकर मुनिराज को राज्य सभा में लिवालाये।

मुनि का ओजपूर्ण शरीर और दैदीप्यमान ललाट देखकर ब्रह्मदत्त स्वस्थ्य हो गये किन्तु अपने भाई को मुनि वेष में देख कर खिन्नमना होकर कहने लगे कि बन्धुवर, पूर्व भव की आपकी त्याग-तपश्चर्या का क्या यही फल है कि आपको भिक्षा के लिये इधर-उधर भटकना पड़ रहा है। मुझको राज्य वैभव और सम्पदा ने वरण किया है किन्तु आपके यह दरिद्रता क्यों पल्ले पड़ी ? मुझे आपके इस कष्टप्रद जीवन को देखकर आश्चर्य भी हो रहा है और दुःख भी। अब आपको भिक्षा जीवी रहने की आवश्यकता नहीं है। मेरी प्रतिज्ञा के अनुसार मेरा आधा राज्य वैभव आपके हिस्से में है।

"राजेन्द्र ! जिस राज्य वैभव में आप अनुरक्त हैं, उससे मैं भी परिचित हूँ" चित्त मुनि कहने लगे—"मेरा जन्म भी एक ऐश्वर्य व वैभव सम्पन्न श्रेष्ठी कुल में हुआ है अतः मुझे भिखारी या दरिद्री समझने की भूल मत करो। एक महात्मा के संयोग से मेरे त्याग वैराग्य के संस्कार जागृत हो गये और सब वैभव सम्पदा को छोड़ कर मैंने अक्षय सुख और शान्ति का यह राजमार्ग अपनाया है। राजन् ! आपको यह राज्य वैभव क्यों मिला, इस पर गहराई से चिन्तन करो। हम दोनों ने पूर्व भव में चित्त और संभूति के रूप में मुनिव्रत अंगीकार कर कठिन साधना की थी जिससे हमारा जीवन बड़ा निर्मल हो गया, कई सिद्धियाँ भी हमको सहज ही प्राप्त हो गयीं। चक्रवर्ती सनतकुमार हमारे दर्शन करने आया और त्याग-वैराग्य की अमिट छाप अपने हृदय पर लेकर वापस चला गया। चक्रवर्ती का राज्य वैभव भोग कर भी वह उसमें उलझा नहीं और विरक्त होकर संयम जीवन अंगीकार कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गया। आप उसके राज्य वैभव और राजरानियों के रूप सौन्दर्य को देखकर आसक्त हो गये और यह निदान (दुःसंकल्प) कर लिया कि मेरी साधना का फल मुझे मिले तो मुझे भी इसी तरह का राज्य वैभव और काम भोगों के साधन प्राप्त हों। त्याग तपश्चर्या का फल तो अनिर्वचनीय आनन्द और अक्षय सुख है किन्तु आपने निदान करके हीरे को कौड़ियों के मोल बेच दिया जिससे आपको यह राज्य वैभव प्राप्त हा गया। इसमें आत्यन्तिक आसक्ति महान् दुःख का कारण बन सकती है। चक्रवर्ती सनतकुमार का अनुसरण कर आपको इन क्षणिक काम भोगों को स्वेच्छा से छोड़ कर अक्षय सुख और शान्ति का राजमार्ग अपनाना चाहिये अर्थात् मुनि जीवन स्वीकार कर लेना चाहिये।"

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

"आर्य ! आपका कथन यथार्थ है। मैं भी समझने को ऐसा ही समझ रहा हूँ।" चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ने कहा—"दलदल में फंसे हुये गजेन्द्र के समान मैं हूँ कि जिसको किनारा तो दिख रहा है किन्तु दलदल से बाहर निकलने की उसकी इच्छा ही नहीं होती। मैंने पूर्व भव में त्यागी जीवन की मर्यादा का उल्लंघन करके क्रोध किया और फिर निदान कर लिया चक्रवर्ती की सम्पदा के लिये, उसी का यह परिणाम है कि आपके समझाने पर भी और त्यागी जीवन की महत्ता के समझते हुये भी मैं राज्य वैभव की आसक्ति को छोड़ नहीं पा रहा हूँ।"

"अगर पूर्ण त्यागी जीवन स्वीकार नहीं कर सकते हो तो गृहस्थाश्रम में रहते हुये श्रावक के व्रत नियम ही धारण करलो जिससे आप अधम गति से तो बच सकोगे।" चित्त मुनि ने वैकल्पिक मार्ग बतलाया।

"मुनिवर ! मेरे लिये यह भी शक्य नहीं है।" चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ने अपनी असमर्थता प्रकट करते हुये उत्तर दिया।

"राजेन्द्र ! पूर्व भवों के स्नेह के कारण मैं चाहता था कि आपको भोगासक्ति के दलदल से बाहर निकालूँ किन्तु मेरा यह प्रयत्न निष्फल गया, अब जैसी आपकी इच्छा।" यह कहते हुये चित्त मुनि (पूर्व भव का नाम) वापस लौट गये।

चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त ने काम भोगों के दलदल में फँसे हुये ही आयुष्य पूर्ण किया और सातवीं नरक में गये। महामुनि चित्त ने उग्र साधना और तपश्चर्या की जिससे अन्त में सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो गये।

दो बन्धु जो पाँच भवों तक साथ-साथ रहे, चौथे भव में कठिन साधना की वे आसक्ति और विरक्ति के कारण इतने दूर बिछुड़ गये कि एक तो रसातल के अंतिम छोर-सातवीं नरक गये और दूसरे ऊर्ध्व गमन की अंतिम सीमा-सिद्धशिला-पर जा बिराजे।

कर्म प्रधान विश्व करि राखा।
जो जस करहि तस फल चाखा॥

[५]

कर्म का भुगतान

☐ श्री चांदमल बाबेल

भगवान् श्रेयांसनाथ इस धरती तल पर भव्य जीवों को सन्मार्ग दिखाते हुए विचरण कर रहे थे। उस समय दक्षिण भरत में पोतनपुर नामक एक नगर

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

था। रिपु प्रतिशत्रु नामक वहाँ का शासक था। उनकी अग्रमहिषी का नाम भद्रा था। कालान्तर में उनके पुत्र रत्न की उत्पत्ति हुई जिसका नाम अचल रखा गया। कुछ काल बाद उस भद्रा महारानी के एक कन्या रत्न की उत्पत्ति हुई जिसका नाम मृगावती रखा गया। मृगावती जब यौवनावस्था में आयी तो उसका एक-एक अंग सुगठित तथा आकर्षक था। राजकुमारी विवाह योग्य हुई तो ध्यानाकर्षण की दृष्टि से माता भद्रा ने उसे पिता के पास राज दरबार में भेजा। राजा रिपु प्रतिशत्रु उस राजकुमारी को आते देखकर मोहाभिभूत हो गया। उसने विचार किया कि यह तो कोई स्वर्गलोक से देवाङ्गना आ रही है। पृथ्वी पर ऐसे स्त्रीरत्न का मिलना बड़ा कठिन है। राजा इस प्रकार का विचार कर रहा था कि वह राजकुमारी पास में आयी एवं पिताश्री को प्रणाम किया। राजा ने उसे पास में बिठाया एवं पुनः सेविका के साथ उसे अन्तःपुर में भेज दिया। राजा अपनी दुर्वासना को दबा न सका। आखिर अपनी चतुराई के बल पर उसने राज दरबारियों से स्वीकृति प्राप्त कर अपनी पुत्री से गन्धर्व विवाह कर लिया। इधर महारानी भद्रा अपने पुत्र अचल को लेकर दक्षिण दिशा में चली गयी जहाँ पर माहेश्वरी नामक नगरी बसायी। कुछ दिनों बाद पुत्र अचल पुनः पिताश्री की सेवा में आ गया।

कालान्तर में मृगावती के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। ज्योतिषियों ने बताया कि यह बालक वासुदेव का पद धारण कर तीन खण्ड का स्वामी होगा। कर्म-गति कितनी विचित्र है कि एक श्लाघनीय पुरुष की उत्पत्ति लोकापवाद निन्दनीय संयोग से हुई। बालक की पीठ पर तीन बांस का चिह्न देखकर उसे त्रिपृष्ठ नाम दिया गया। बालक अपने बड़े भाई अचल के साथ रहने लगा। योग्य वय पाकर कला-कौशल में निपुण हो गया। दोनों भाइयों में स्नेह इतना अधिक था कि एक दूसरे के बिना नहीं रह सकते थे।

उस समय में रत्नपुर में अश्वग्रीव नामक शासक शासन करता था। वह महान् योद्धा और वीर था। सोलह हजार राजा उसके अधीन थे। वह प्रति-वासुदेव था।

तत्कालीन परिस्थिति में रथनुपुर चक्रवाल नामक नगरी में विद्याधरराज ज्वलनवटी प्रबल पराक्रमी नरेश था, उनकी पत्नी का नाम वायुवेगा था। कालान्तर में उसके एक कन्या की उत्पत्ति हुई जिसका नाम स्वयंप्रभा रखा गया। उसका विवाह त्रिपृष्ठ वासुदेव से करने हेतु ज्वलनवटी उसे लेकर पोतन-पुर चला आया तथा विवाह की तैयारी होने लगी। यह बात अश्वग्रीव को मालूम हुई तो वह अपनी सेना लेकर पोतनपुर चला आया क्योंकि स्वयंप्रभा से वह विवाह करना चाहता था। घमासान युद्ध हुआ। अश्वग्रीव मारा गया। अन्त में सभी राजाओं ने त्रिपृष्ठ वासुदेव की आज्ञा में रहना स्वीकार किया

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

तथा धूमधाम से वासुदेव पद का अभिषेक किया गया।

त्रिपृष्ठ वासुदेव राजसी भोग-विलास में तल्लीन थे। महारानी स्वयंप्रभा के श्रीविजय और विजय नामक दो पुत्ररत्नों की उत्पत्ति हुई।

एक बार संगीत मंडली भ्रमण करती हुई राज दरबार में उपस्थित हुई। गायक अपनी कला में पूर्ण निपुण थे। ज्योंही उन्होंने अपनी कला का प्रदर्शन किया तो सब मंत्रमुग्ध हो गये एवं उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। एक दफा रात्रि को इस प्रकार का मनोरंजक कार्यक्रम चल रहा था। राजा अपनी शय्या पर लेटे हुए थे। संगीत की स्वर-लहरी सभी को मंत्रमुग्ध कर रही थी। त्रिपृष्ठ ने अपने शय्यापालक को कहा कि जब मुझे पूर्ण निद्रा आ जावे तो संगीत गाने वालों को विश्राम दे देना। इधर वासुदेव पूर्ण निद्राधीन हो गये किन्तु शय्यापालक स्वयं संगीत में इतना गृद्ध हो गया कि संगीतज्ञों को विश्राम का आदेश नहीं दिया तथा रात-भर संगीत होता रहा। वासुदेव जब जगे तो देखा कि संगीत पूर्ववत चल रहा है। राजा को आक्रोश आया एवं शय्यापालक को कहा कि इन्हें विश्राम क्यों नहीं दिया? शय्यापालक ने कहा—"महाराज! मैं क्षमाप्रार्थी हूँ। मैं स्वयं संगीत सुनने में आसक्त हो गया इसलिये आपके आदेश का पालन नहीं हो सका।" त्रिपृष्ठ वासुदेव ने कहा—"अच्छा! मेरे आदेश की अवहेलना। सामन्तो! यह संगीत सुनने का अत्यधिक रसिक है, इसलिये इसके कानों में गर्म शीशा डाला जाय।" सामन्तों ने आज्ञानुसार वैसा ही किया। शय्यापालक ने तड़पते हुए प्राण छोड़े।

सत्तान्ध बनकर त्रिपृष्ठ वासुदेव ने कर्म के बन्धन के फलस्वरूप आयु पूर्ण कर सातवीं नारकी में जन्म लिया। तैंतीस सागरोपम का आयुष्य पूर्ण कर सिंह, नारकी, चक्रवर्ती, देवता, मानव, देव आदि भवों को पूर्ण कर वर्द्धमान महावीर के भव में जन्म लिया।

महावीर अभिनिष्क्रमण के बाद जंगलों, गुफाओं में ध्यान करते हुये "छम्माणी" ग्राम के निकट उद्यान में एक निर्जन स्थान में ध्यानस्थ थे। उस समय शय्यापालक का जीव—जिसके कानों में गर्म-गर्म सीसा उंडेला गया था, वह ग्वाले के भव में बैलों की जोड़ी को साथ लेकर जहाँ महावीर ध्यानस्थ थे, वहाँ पर आया एवं बोला—"हे भिक्षु! मैं कुल्हाड़ी घर छोड़ आया हूँ, उसे लेकर आता हूँ तब तक बैलों की रखवाली रखना।" इधर बैल चरते हुए घनी झाड़ियों में ओझल हो गये। ग्वाला वापिस आया तो बैलों की जोड़ी नजर नहीं आयी। ग्वाले की आँखों में आग बरसने लगी। वह महावीर को अभद्र शब्दों से बोलने लगा। किन्तु भगवान तो ध्यानस्थ थे, कोई उत्तर नहीं दिया। तब ग्वाले का क्रोध अधिक बढ़ गया और बोला—"अच्छा, तुम मेरी बात सुन नहीं रहे हो तो

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

लो तुम्हें बहरा करके ही दम लूँगा। उसने दोनों कानों में काष्ठ के तीखे कील ठोके और चला गया। इससे महावीर को तीव्र वेदना हुई, किन्तु उनका चित्त क्षण मात्र भी खिन्न नहीं हुआ तथा चिन्तन धारा में निमग्न हो गये। "मेरी आत्मा ने ही त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव में शय्यापालक के कानों में गर्म सीसा डलवाया था। उसी कर्म विपाक का आज भुगतान हो रहा है। इसमें ग्वाले का क्या दोष ? मैंने जैसा कर्म किया, उसी का फल आज मुझे मिल रहा है। वास्तव में कर्मों का भुगतान हुए बिना मुक्ति नहीं है।"

ण तस्स दुक्खं विभयंति णाइओ, ण मित्तवग्गा ण सुया ण बंधवा ।
इक्को सयं पच्चणु होइ दुक्खं, कत्तारमेव अणुजाइ कम्मं ।।

—उत्तरा० १३/२३

अर्थ:—पापी जीव के दुःख को न जाति वाले बँटा सकते हैं, न मित्रमंडली, न पुत्र, न बंधु। वह स्वयं अकेला ही दुःख भोगता है क्योंकि कर्म कर्त्ता का ही अनुसरण करता है (कर्त्ता को ही कर्मों का फल भोगना पड़ता है)।

सुखस्य दुखस्य न कोऽपि दाता, परो ददातीत्ति कुबुद्धिरेषा ।
अहं करोमीति वृथाभिमानः, स्वकर्म सूत्र ग्रथितो हि लोकः ।।

अर्थ:—सुख-दुःख का देने वाला कोई नहीं है। अन्य जीव मेरे सुख-दुःख का कारण है, यह कुबुद्धि-मात्र है। मैं कर्त्ता हूँ यह मिथ्याभिमान है। समस्त संसार कर्म के प्रभाव से ही ग्रथित है।

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे, भार्या गृह द्वारि जनः श्मसाने ।
देहश्चितायां परलोकमार्गे, कर्मानुगो गच्छति जीव एकः ।।

अर्थ:—जीव के परलोक प्रस्थान करते समय उसके द्वारा अर्जित धन भूमि में ही रह जाता है, पशुवर्ग उसकी शाला में ही बँधा रह जाता है। भार्या गृह के द्वार तक ही रह जाती है, मित्र-मण्डली श्मशान तक पहुँचाती है। यह शरीर जो लम्बे समय तक जीव का साथी रहा, वह भी चितापर्यन्त साथ देता है। जीव अकेला ही कर्मानुसार परलोक गमन करता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org